Printed by V. V. Pathak at Jagadishwar Press Girgaon Gaiwadi house No. 2 Bombay. Published by Brajawallabha Hariprasad for Hariprasad Bhagirathji Ramwadi Bombay.
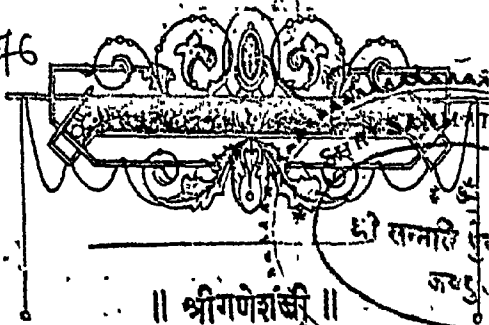
॥ श्रीगणेशजी ॥

पतिव्रता-माहात्म्य

और

कौशिक ब्राह्मण धर्मव्याध संवाद.

(पहिला अध्याय)

वैशम्पायनजी बोले कि-हे राजा जनमेजय ! राजा युधिष्ठिरने मार्कण्डेयजीसे यह धर्मप्रश्न पूछा कि महाराज मैं आपके मुखारविन्दसे स्त्रियोंका उत्तम माहात्म्य और सूक्ष्म-धर्म विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं. इस संसारमें सूर्य, चन्द्रमा, वायु, पृथ्वी और अग्नि प्रत्यक्ष दीखते हैं और

पिता माता और गुरु और जो कुछ और देवताओंके रचे हुये पदार्थ हैं वेभी दृष्टि आते हैं सो जैसे ये सब बडे माननीय हैं उसी प्रकारसे एक पति रखनेवाली स्त्रियां भी आदर करनेके योग्य हैं; परंतु पतिव्रता स्त्रियोंकी सेवा मुझको बडी कठिन दिखाई देती है. क्योंकि वे मन और इन्द्रियोंको एक कर पतिको देवताकी समान. ध्यान करती हैं. मुझको उनका कर्म बहुत कठिन दिखाई देता है,इससे आप मुझको पतिव्रताओंका माहात्म्य सुनाइये. पुरुषको मातापिताकी सेवा करना और स्त्रीको पतिकी सेवा करना उचित है. परन्तु स्त्रियोंके कठिन धर्मसे अति कठिन दूसरा धर्म मुझको दिखाई नहीं देता है.साधु आचारवाली स्त्रियां जो जो काम करती हैं वे सब निस्संदेह बडे कठिन हैं और इसी प्रकारसे मातापिताकी सेवा करना भी बडा कठिन है. परंतु स्त्रियां एक पति रखकर और सत्य बोलकर दश महीना गर्भ धारण करती हैं और बडे बडे दुःख उठाकर पुत्रोंको उत्पन्न करके बडे स्नेहसे पालती हैं. स्त्रियोंका इससे और क्या अद्भुत कर्म होगा और जो जो बर्ताव क्रूर पुरुषोंमें होते हैं और निन्दित मनुष्य जैसे कर्म करते हैं, वेभी मुझे बडे कठिन

दीखते हैं. इससे मैं आपसे क्षत्रियधर्मके आचारका वृत्तांत सुना चाहता हूं. कृपा करके जो कुछ मैंने पूंछा है उसे आप वर्णन कीजिये. मैं विनयपूर्वक आपसे पूंछता हूं. मार्कण्डेय-जी बोले कि–बहुत अच्छा. हम तुम्हारे सब दुर्लभ प्रश्नोंका उत्तर विस्तारपूर्वक देते हैं. सुनो. कोई मनुष्य माताको और कोई पिताको अधिक जानते हैं परन्तु दोनोंकी सेवा ए-कसीही करना उचित है. देखो, माता बडे बडे कष्ट उठा-कर पुत्रको पालती है और पिताभी तप और देवताओंकी पूजा और क्षमा और अनुष्ठान आदि अनेक उपाय करके पुत्रका कल्याण चांहता रहता है और माता पिता दोनों इस प्रकारसे कष्ट सहकर इस आशासे पुत्रको पालकर बडा करते हैं कि वह यश, कीर्ति और ऐश्वर्यको बढावैगा और प्रजाका पालन करैगा. सो जो पुत्र अपने माता और पि-ताकी उस आशाको सफल कर दिखाता है उसीको ध-र्मका जाननेवाला समझना चाहिये. और जिस मनुष्यके माता और पिता सदैव प्रसन्न रहते हैं उसकी इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें कीर्ति रहती है. अब स्त्रियोंकी व्यवस्था सुनो. स्त्रियोंको अपने पतिकी सेवाके सिवाय कोई यज्ञक्रिया, श्राद्ध और व्रत आदि करना उचित नहीं

है. उनको पतिकी सेवाहीसे स्वर्ग मिलता है. अब तुम पति- व्रताओंके धर्मका वृत्तान्त वर्णन करते हैं उसको भी सुनो.

इति पहिला अध्याय सम्पूर्ण.

(दूसरा अध्याय)

मार्कंडेयजी बोले कि–हे राजा युधिष्ठिर! कौशिक नाम- क एक बडा तपस्वी वेदपाठी और धर्मशील ब्राह्मण था. वह वेदोंको सब अंग और उपनिषदों सहित पढता था. एक दिन वह किसी वृक्षकी जडपर बैठा हुआ वेदपाठ कर रहा था. वृक्षके ऊपर एक बलाका अर्थात् बगला पक्षिणी गुप्त बैठी हुइ थी. उस पक्षिणीने उस ब्राह्मणके ऊपर वीट कर दी तब उस ब्राह्मणने उस चिडियापर क्रोध करके शाप दिया और उसकी ओर अत्यंत क्रोधसे देखा. वह चिडिया उस ब्राह्मणके शापसे निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिर पडी. उसको देखकर वह ब्राह्मण दयासे विचारने लगा कि–क्रोधमें मैंने यह बुरा काम किया जो इसके प्राण लिये. इस प्रकारसे अनेक बातें विचारता और कहता

हुआ वह ब्राह्मण भिक्षा मांगनेके लिये ग्राममें चला गया और पवित्रकुल जनोंके घर जाकर भिक्षा मांगते-मांगते वह उस घरपर पहुँचा जहांसे पहिले भी कभी भिक्षा ले आया था और वहां यह कहकर घरके द्वारपर खड़ा रहा कि–भिक्षा दो. भीतरसे एक स्त्रीने उसको उत्तर दिया कि थोड़ी देर ठहरो; मैं बर्तन धो रही हूं. इनको धोकर तुझे भिक्षा लाती हूं. इसी अवसरमें उस स्त्रीका पति–जो उस समय बहुत भूखा था–अकस्मात् आ गया. उसको देखकर वह स्त्री उस ब्राह्मणको भिक्षा डालना भूल गई और अपने पतिको पाद्य, आचमन और आसन देकर उसकी सेवा करने लगी और सुन्दर भोजन और मधुर व्यंजन और शीतल जलसे उसे अच्छी तरह तृप्त किया और उसकी जूंठनको आप भोजन किया. इस प्रकारसे वह स्त्री सदैव प्रीतिपूर्वक अपने पतिको देवकी समान जानकर उसके चित्तकी वृत्तिके अनुसार सब काम करती थी और मन, वाणी और कर्मसे अपने चित्तको पतिके काममें अनन्य करके उसके समीप रहती थी. आचार उस स्त्रीके साधु थे और वह पतिकी सेवा प्रीतिपूर्वक सब भावोंसे करती थी और बड़ी चतुर, कुटुम्बका हित चाहनेवाली, पतिकी आ-

ज्ञापर चलनेवाली, जितेंद्रिय और देवता-अतिथि और सासु और श्वशुरकी सेवा करनेवाली थी. सो जब वह स्त्री अपने पतिकी सेवा सब प्रकारसे कर चुकी तब उसको उस ब्राह्मणकी याद आई और वह भिक्षा लेकर शीघ्र बाहिर निकली. तब उसको देखकर वह ब्राह्मण बोला कि तूने मुझको भिक्षा देनेके लिये खड़ा करके इतनी विलम्ब किस कारणसे लगाई? मुझे बिदा क्यों नहीं कर दिया? यह सुनकर और उस ब्राह्मणको क्रोधसे संतप्त तेजसे प्रज्व-लित देखकर वह स्त्री सांत्वपूर्वक बोली कि महाराज! आप क्षमा कीजिये मैं अपने पतिको सबसे बड़ा देवता समझती हूं इसलिये उसकी सेवा करने लग गई और आपको भिक्षा डालने न आ सकी. ब्राह्मण बोला-अच्छा. ब्राह्मण बड़े नहीं हैं. तूने अपने पतिको बड़ा ठहराया है. तू गृहस्थी होकर ब्राह्मणोंका अपमान करती है. तू यह नहीं जानती है कि ब्राह्मणको इन्द्रभी प्रणाम करता है. संसारी मनुष्योंकी किनमें गिनती है? तैंने अभी वृद्ध लोगोंसे उपदेश नहीं पाया है? खरा ब्राह्मण अग्निकी समान है. अपने तेजसे इस पृ-थ्वीकोभी भस्म कर सक्ते हैं. यह सुनकर वह स्त्री बोली कि महाराज! आप क्रोध छोड़ दीजिये इस क्रोधके दृष्टिसे

आप मेरा कुछ नहीं कर सक्ते हैं.मैं कुछ बलाका पक्षिणी तौ नहीं हूं जिसको आपने भस्म कर दिया था यह मेरा अपराध क्षमा करनेके योग्य है. ब्राह्मण निस्संदेह देवताके समान हैं. मैं उनका अपमान नहीं करती हूं. और ब्राह्मणोंके तेज और माहात्म्यकोभी जानती हूं ब्राह्मणोंके क्रोधकी अग्नि दण्डकवनमें अभीतक नहीं बुझी है. ब्राह्मणोंने क्रोधसे खारी समुद्रको पी लिया था और ब्राह्मणोंका अपमान करनेकेही कारणसे अगस्त्यजीने वातापी दैत्यको पचा डाला था सो मैंने माहात्मा ब्राह्मणोंके बड़े बड़े प्रभाव सुने हैं और मैं जानती भी हूं कि उनका प्रसाद और क्रोध बहुत बड़ा है; परन्तु मैं पतिको सब देवताओंमें परम देवता जानती हूं और उसीकी सेवा करनेका धर्म मुझको प्यारा लगता है. इससे मैंने पतिकी सेवाके धर्मको पूरा पूरा किया है और उसके फ़लको आप प्रत्यक्ष देख लीजिये कि मुझको उस बलाका पक्षीका वृत्तान्त पूरा पूरा मालूम हो गया जिसको आपने क्रोधसे भस्म कर डाला था. इससे आपको मेरे ऊपर क्षमा करना उचित है. मनुष्यके शरीरमें क्रोध शत्रुरूप होता है. जो कोई उसको त्याग देता है और जो सत्यवादी, गुरुभक्त, शान्तस्वरूप,

जितेन्द्रिय, धर्मतत्पर, वेदपाठी, पवित्र, काम और क्रोधको वशमें करनेवाला, सबको अपनी आत्माकी समान समझनेवाला, धर्मप्रिय, वेद पढ़नेवाला, वेद पढ़ानेवाला, यज्ञ करनेवाला, यज्ञ करानेवाला, ब्रह्मचारी और जपका करनेवाला होता है देवता उसीको ब्राह्मण कहते हैं. सत्यवादी झूठ कभी नहीं बोलना चाहते हैं और ब्राह्मणोंकी कुशलकी बात कहना और वेदपाठ, इन्द्रियोंका रोकना और दमका आचार रखना ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है. धर्मज्ञ लोग सत्य और आर्जव अर्थात् कुटिलतारहित धर्मको परम धर्म कहते हैं. सनातन धर्मका जानना बहुत कठिन है.वह धर्म केवल सत्यमें स्थित है. वृद्धलोग ऐसा उपदेश करते हैं कि जो धर्म किया जाय वह ऐसा न चाहिये कि उसका प्रमाण श्रुतिमें भी न मिले; क्योंकि बहुधा धर्म सूक्ष्मभी होता है सो हे. भगवन्! आप भी धर्मज्ञ, वेदपाठी और पवित्र हैं परन्तु आप अभी धर्मको तत्वपूर्वक नहीं जानते हैं, इससे आपको उचित है कि–आप मिथिलापुरीमें जाकर धर्मव्याधसे परम धर्म पूंछे. वह सत्यवादी,जितेंद्रिय और मातापिताकी सेवा करनेवाला है. वह आपको सब धर्मोंको बतावैगा. अब आप इच्छापूर्वक वहां जाइये; आपका कल्याण होगा

और मेरे कहने सुननेको आप क्षमा कीजिये. धर्म जान-नेवालोंके निकट स्त्रियां सबको अवध्य हैं. यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि-हे शोभने ! तेरा कल्याण और भला हो. मेरा सब क्रोध जाता रहा. मैं तुझपर बहुत प्रसन्न हूं आप यद्यपि तैंने मुझसे अनेक निन्दावचन कहे परन्तु मैं उन सबको अपना कल्याणकारक समझता हूं. अच्छा, अब मैं जाता हूं और अपने कार्यको साधन करता हूं. मार्कंडेयजी बोले कि-हे राजा युधिष्ठिर ! वह ब्राह्मण उस स्त्रीसे भिक्षा ले बिदा होकर, अपनी आत्माकी निन्दा करता हुआ अपने घरको गया. इति दूसरा अध्याय सम्पूर्ण.

(तीसरा अध्याय)

मार्कण्डेयजी बोले कि-हे राजा युधिष्ठिर ! वह ब्राह्मण उस स्त्रीके कहे हुये आश्चर्यरूप वचनोंको सुनकर चिन्ता करता हुवा अपनी आत्माकी निन्दा करने लगा और ऐसा हो गया मानो अपराधी है और मनमें विचार करने लगा कि चिन्ता करनेसे मनुष्य धर्मकी सूक्ष्म गति-

को जान सक्ता है. इससे मुझे चाहिये कि मैं मिथिलापु-
रीको अभी जाऊं और वहां जो शुद्ध अंतःकरण और
धर्मका जाननेवाला धर्मव्याध रहता है उससे धर्मकी व्य-
वस्था पूंछूं. ऐसा विचार कर, वह ब्राह्मण, बलाकाके भस्म
होनेका पता देनेके कारणसे उस स्त्रीके धर्मरूपी वचनोंमें
श्रद्धा करके मिथिलापुरीको चल दिया और अनेक ग्राम
और नगरोंमें होता हुआ राजा जनककी उस पुरीमें जा प-
हुँचा. वहांके निवासी बड़े धर्मात्मा और पुष्ट थे और प्रसन्नता-
पूर्वक रहते थे. जहां तहां उस पुरीमें यज्ञस्थान बने हुए थे और
राजमंदिर, गोपुर, अटारियां और प्राकार अर्थात् शहरप-
नाहसे वह नगर परम शोभित हो रहा था और अनेक
प्रकारके रमणीक विमान, चौड़ी चौड़ी गलियां और
घोड़ा हाथी और योद्धाओंसे बड़ा रमणीक दीखता था
और उसमें नित्य उत्सव हुआ करते थे. वह ब्राह्मण उस
पुरीकी शोभाको देखता हुआ भीतर गया और वहां उसने
ब्राह्मणोंसे उस धर्मव्याधका घर पूंछा. ब्राह्मणोंने उसे बता-
दिया कि वह घर है. तब वह वहां चला गया और उस धर्म-
व्याधको उसने मृग और भैंसोंके मांसके वधस्थानमें बेचते
हुये देखा परन्तु ग्राहकोंकी भीड़भाड़के कारणसे वह वहां

नहीं गया किन्तु एक एकान्तस्थानमें खड़ा हो गया. उसी समय वह व्याध उस ब्राह्मणके आनेके वृत्तान्तको जानकर शीघ्र उठकर उसके पास चला आया और कहने लगा कि-महाराज! आपका आना शुभ हो.मैं आपको दंडवत् करताहूं मैं ही व्याध हूं. कहिये, मुझको क्या आज्ञा है? आप जो इहां पतिव्रता स्त्रीके कहनेसे आये हैं उस सब वृत्तान्तको मैं जानता हूं. यह सुनकर वह ब्राह्मण बड़े आश्चर्यमें आ गया और उस व्याधकोभी पतिव्रताकी समान त्रिकालदर्शी जानकर कहने लगा कि-यह दूसरा आश्चर्य है. इसके पीछे उस व्याधने यह विचार करा कि यह स्थान अच्छा नहीं है. उस ब्राह्मणसे कहा कि जो तुह्मारी इच्छा होय तौ घर चलौ. वह ब्राह्मण प्रसन्न होकर बोला बहुत श्रेष्ठ.चलिये.तब वह धर्मव्याध ब्राह्मणको आगे आगे करके अपने घरपर लिवाले गया और पाद्य और आचमन देकर उसे आसनपर बड़े आदरसे बैठाया. इसके उपरान्त सुखपूर्वक बैठनेपर उस ब्राह्मणने व्याधसे कहा कि आपका कर्म मुझे आपके योग्य नहीं दीखता है इससे मुझे बड़ा दुःख होता है. व्याध बोला कि-महाराज! यह कर्म हमारे कुलका आचरण और बाप दादोंका पद है.हम अपने

धर्मपर चलते हैं इससे आप इस बातका दुःख न मानिये. विधातानें पूर्वकालसे हमारे लिये जो कर्म रचा है उसको और अपने वृद्ध माता और पिताकी सेवामें मैं तत्पर रहता हूं और बोलता हूं. दूसरोंके गुणोंमें दोष नहीं लगाता हूं. यथाशक्ति दानभी देता हूं और जो अन्न देवता भृत्य और अतिथि आदिको देकर शेष रहता है उसीमें अपना निर्वाह करलेता हूं. इसके सिवाय मैं किसीमें कोई दोष होय तौभी नहीं कहता हूं और मिथ्या दोप तो कभी लगाताही नहीं हूं. हे महाराज ! पूर्वजन्ममें किया हुआ कर्म बड़ा बलवान् होता है और करनेवालेके पीछे चलता है. संसारमें जीविका उत्पन्न करनेके लिये खेती, गोरक्षा, वाणिज्य, दंडनीति और तीनो विद्याओंका जानना है सो सब वर्णोंके मनुष्य अपने अपने वर्णके अनुसार कर्म करके जीविका उत्पन्न करते हैं अर्थात् शूद्र सेवासे, वैश्य खेतीसे, क्षत्रिय संग्रामसे और ब्राह्मण ब्रह्मचर्य, तप, मंत्र और सत्यसे जीविका उत्पन्न करते हैं. राजा इन चारों वर्णोंपर शासन करता है और इनमेंसे जो मनुष्य कोई कर्म नहीं करता है उसको कर्मसे युक्त करता है. मनुष्यको राजासे भय करना अवश्य है. क्यौं कि-वह विपरीत कर्म करनेवाली

प्रजाको विपरीत कर्म करनेसे रोकता है; देखिये, यहां राजा जनकका राज्य है. कोई मनुष्य इस राज्यमें विपरीत कर्म नहीं करता है किन्तु सब वर्णोंके मनुष्य अपना अपना कर्मही करते हैं. कारण यह है कि-यह राजा, धर्मात्माओंसें ग्लानि नहीं करता है और खोटा काम करनेवालेको उसका पुत्रभी हो तो भी बिना दंड दिये नहीं रहता है और राज्य, दंड और लक्ष्मी आदि सब राज्यधर्मोंको धर्मपूर्वक करता है और अपनी लक्ष्मीको धर्मसेही बढ़ाना चाहता है और चारों वर्णोंकी रक्षा करता है और मैं उन बाराह मृग और भैंसोंके मांसको वेचता हूं. जो दूसरे मनुष्य मारकर लाते हैं कुछ अपने आप मैं इनका वध नहीं करता हूं. उसके सिवाय मैं मांस खाताभी नहीं हूं और स्त्रीके पासभी ऋतुकालपरही जाता हूं और व्रतभी करता हूं और रात्रिके समय भोजन किया करता हूं. अशीलवान् पुरुष शीलवान् और हिंसक धार्मिक भी हो जाया करते हैं. जब राजाओंका आचार खोटा हो जाता है तब धर्म कर्म नष्ट हो जाता है और अधर्म अधिक होने लगता है और उस अधर्मसे प्रजाका नाश हो जाता है और प्रजाके मनुष्य कोई भयानक, कोई कुबड़ा, कोई मोटा, कोई पतला, कोई नपुंसक, कोई अन्धा, कोई बहिरा और

कोई स्तब्धलोचन होने लगते हैं. परन्तु यह हमारा राजा जनक सब प्रजाको बड़े धर्मसे पालन करता है और आपभी धर्मपर चलाकर प्रजापर अनुग्रह रखता है. प्रायः बहुतसे मनुष्य मेरी निन्दा और बहुतसे मेरी प्रशंसा किया करते हैं परन्तु मैं उन दोनोंको अपने साधुकर्मोंसे प्रसन्न रखता हूं. राजा वही है जो अपनी सेनाके लिये स्थान बनवाता है और अपने व्ययके लिये धर्मसे धन उत्पन्न करता है और जो राजा जितेन्द्रिय और उत्थानशील अर्थात् उद्यमी होता है वह सिवाय धर्मके और प्रकारसे जीविका उपार्जन नहीं करता है और यथाशक्ति नदैव अन्नदान देना, क्षमा रखना. धर्मपर सदैव चलना और प्राणियोंकी सब अवस्थाओंमें यथायोग्य पूजा करना ये गुण, मनुष्यमें संसारी भोगोंको विना त्यागे नहीं आ सक्ते हैं. मनुष्यको उचित है कि मिथ्या बोलना छोड़ दे. जो कोई किसी कामको कहै उसका वह काम करदे और काम द्वेष और भयके कारणसे धर्मको कभी न छोड़े. जो कोई काम अपनी इच्छाके अनुकूल होय तो प्रसन्न होय और विपरीत काम होनेसे चित्त म्लान न करै और जो अर्थके साधनमें कोई कष्ट आन पड़े तो उस कष्टसे मोहित होकर

धर्मको न छोड़े जो काम विपरीत होय उसको दुबारा न करे और जिस काममें अपना और दूसरेका कल्याण दीखे उसे अवश्य करै. पापियोंकी संगतमें जाकर आपभी पापी न हो जाय किन्तु साधु हो रहै. क्योंकि पापी अपने आपही नष्ट हो जाता है और जो लोग पवित्र पुरुषोंसे यह कह कर हंसते हैं कि-यह कर्म असाधु और व्यसनी पुरुषोंका है धर्म नहीं है और धर्ममें किंचित् मात्र भी श्रद्धा नहीं करते हैं वे निस्सन्देह नाश हो जाते हैं. हे महाराज! आप पापी मनुष्योंको इस प्रकारसे निःसार समझिये जैसे वायु भरीहुई चर्मकी धौकनी अर्थात् वायुके निकलनेपर फिर फूली हुई नहीं रहती है मूढ और घमंडी मनुष्योंके विचारमें कोई सारांश नहीं होता है यह बात तुमको अंतरात्मासे इस प्रकारसे प्रतीत हो सक्ती है जैसे सूर्यसे दिन प्रतीत होता है. मूर्ख केवल अपनी प्रशंसा आप करनेसे शोभा नहीं आते हैं और पण्डित मलिन होनेपरभी अपनी विद्याका प्रकाश करता है. हमने इस पृथ्वीपर किसी मूर्खको जो पराई निंदा और अपनी स्तुति करता है गुणवान् नहीं देखा. जो मनुष्य किसी पापकर्मको करता है और करके उसका

पश्चात्ताप करता है वह पिछले कियेहुये पापसे छूट जाता है और जो यह संकल्प करता है कि-फिर ऐसा पाप न करूंगा वह उस कियेहुये पापका फल नहीं भोगता है और ऐसी भी श्रुति है कि मनुष्य जप, तप आदि और उपायोंसे भी पापसे छूट जाता है और जो मनुष्य धार्मिक होकर अज्ञानसे हिंसा आदि पापकर्म करता है वह प्रमादसे किये जानेपर मनुष्यके धर्मको नाश कर देता है और जो मनुष्य पापकर्म करके ऐसा मानता है कि-उस पापका करनेवाला मैं नहीं हूं दूसरा है उसके भीतर रहनेवाले देवता मारते हैं और जो पुरुष श्रद्धावान् होता है और दूसरेके गुणोंमें दोष नहीं लगाता है और साधुओंके छिद्रको वस्त्रकी समान ढकनेका उपाय करता है उसका कल्याण होता है और जो मनुष्य पाप करके उससे छूटनेका उपाय करता है उसका वह पाप इस प्रकारसे दूर हो जाता है जैसे बादलमें छिपा हुआ चन्द्रमा बादलके हट जानेसे निर्मल निकल आता है और जैसे सूर्यके उदय होनेसे अंधेरा दूर हो जाता है उसी प्रकारसे मोक्षका उपाय करनेवाले मनुष्यके सब पाप दूर हो जाते हैं

हे महाराज ! पापका मूल लोभ है. लोभ और शास्त्रको न जाननेवाले मनुष्य निश्चय पाप करते हैं जैसे अधर्मी मनुष्य पाखण्ड रूपी धर्मसे इस प्रकारसे भरेहुये होते हैं जैसे घास फूससे भराहुवा कूप और बाहरकी इन्द्रियोंको रोकना और स्नान आदि धर्म सम्बंधी वार्ता वे लोग करते हैं परन्तु शिष्टाचार बड़ा दुर्लभ पदार्थ है वह उनमें नहीं होता है. मार्कण्डेयजी बोले-हे राजा युधिष्ठिर! उक्त कथाको सुनकर उस ब्राह्मणने धर्म्मव्याधसे पूंछा कि मैं शिष्टाचारको कैसे जान सक्ता हूं ? आप कृपा करके इस वृत्तान्तको मुझे यथावत् सुनाइये. धर्मव्याध बोला कि-महाराज! यज्ञ, तप, दान, वेद और सत्य ये पांचौ पवित्र कर्म शिष्टाचारमें गिने जाते हैं. जो मनुष्य काम, क्रोध, दम्भ, लोभ और कुटिलताको त्यागकर धर्ममें परायण रहते हैं वेही शिष्टपुरुष हैं ऐसेलोग स्वभावहीसे जप और यज्ञ करते रहते हैं और कोई धर्म अपनी कल्पनासे नहीं करते हैं आचारका पालनभी शिष्ट होनेका दूसरा लक्षण है सो जो शिष्टाचारी पुरुष हैं उनकी वृत्ति सदैव गुरुसेवा, सत्य, दान और क्रोधके त्यागमें रहती है. विना इनके किये शिष्टाचारमें मन रत-

नेवाले मनुष्यको शिष्टवृत्ति पाना दुर्लभ है. वेदका सार सत्य है और सत्यका सार दम्भ अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना और दम्भका सार त्याग है यही सार शिष्टाचारमें सदा गिना जाता है. जो मनुष्य बुद्धिमान् होकर मोहके कारणसे धर्मकी निन्दा करता है उसके बर्तावपर चलनेवाला मनुष्य बहुत क्लेश पाता है और जो मनुष्य शिष्टकर्ममें निरत होकर श्रुति और त्याग और सत्यपरायण और धर्मात्मा होते हैं वे धर्मार्थदर्शी उपाध्यायके मतके अनुसार कर्म करके परबुद्धि अर्थात् जो पदार्थ सबसे परे है उसको प्राप्त करते हैं सो हे ब्राह्मण ! तुम नास्तिक क्रूरकर्मी, पापी और मर्य्यादाको छोडकर चलनेवाले पुरुषोंको त्याग कर और ज्ञानमें आश्रित होकर धर्मात्माओंका सत्संग करो और इस जन्म और मरणरूपी नदीको—जिसमें काम और लोभरूपी बडे बडे ग्राह हैं और पांचो इन्द्रीरूपी जल भरा हुवा है—धृतिरूपी नावपर चढकर उतर जावो. जैसे श्वेत वस्त्रपर सब रंग सुगमतासे चढ जाते हैं उसी प्रकारसे शिष्टाचार रखनेवाले मनुष्यके हृदयमें क्रमसे इकठा किया हुआ ज्ञानयोगरूपी धर्म बिना परिश्रम दृढ हो जाता है.

हिंसा न करना परम धर्म और प्राणियोंका बडा हित है
वह अहिंसाका धर्म, केवल सत्यसे हो सक्ता है इससे स-
त्यमें स्थिर होनेसे सब सुकर्मोंमें प्रवृत्ति हो जाती है और
शिष्टाचारोंमें सत्यही सबसे भारी है और आचार सत्पुरु-
षोंका धर्म और संतोंका लक्षण है जिस जीवका जैसा
स्वभाव होता है उसका वैसाही स्वभाव बना रहता है
और जिस मनुष्यका चित्त अपने वशमें नहीं होता है वह
पापी काम और क्रोध आदि दोषोंको शीघ्र ग्रहणकर लेता
है. जिस कर्मका आरम्भ न्यायके अनुसार है उसीका
नाम धर्म है और जो अनाचार है वही अधर्म है और
जो मनुष्य क्रोधहीन, दूसरेके गुणोंमें दोष न लगानेवाला,
अहंकार और मत्सरतारहित, सीधा, समदर्शी, वेदपाठी,
पवित्रवृत्तिवान्, मनस्वी, गुरुभक्त और जितेन्द्रिय है वही
शिष्टाचार रखनेवाला है ऐसे कठिन कर्म्म करनेवाले स-
त्कृत और ज्ञानी शिष्टाचारी मनुष्योंके हिंसात्मक कर्म्म
अर्थात् पाप नाश हो जाते हैं और वे आश्चर्यरूप, अनादि,
अनवच्छिन्न और नित्य धर्मको धर्मसे वर्तते हुये स्वर्ग
प्राप्त करते हैं. जो सन्त आस्तिक बुद्धि रखनेवाले, मान-
हीन ब्राह्मणोंके पूजक और वेदविहित मार्गपर चलनेवाले

हैं वे निस्सन्देह स्वर्गवासी हैं, धर्मके लक्षण तीन हैं. वेदोक्तधर्म, शास्त्रोक्तधर्म और शिष्टपुरुषोंका शिष्टाचार और विद्याओंका समापन अर्थात् समाप्त. तीर्थस्नान, क्षमा, सत्य, सीधापन और शौच ये सत्पुरुषोंका आचारदर्शन है और सब जीवोंपर दया करना, अहिंसा और ब्राह्मणोंसे प्रीति रखना, कठोर वचन न बोलना और शुभ और अशुभ कर्मोंके संचयमें विपाक अर्थात् पाप और पुण्यकी क्षयको जानना और न्यायपूर्वक सबपर एक दृष्टि रखना ये लक्षण शिष्टपुरुष और संसारका हित चाहनेवालोंके हैं और हिंसा न करना, धर्म रखना, ब्रह्मके मार्गका चिन्तवन करना, दान करना, दीनोंपर अनुग्रह करना, सबका पूज्य होना, वेदरूपी धन रखना, तप करना, सबपर दया करना येभी स्वर्गको जीतनेवाले शिष्टपुरुषोंके आचार हैं, ऐसे दानमें निष्ठा रखनेवाले पुरुष इस लोकमें लक्ष्मी और परलोकमें सुख पाते हैं और सत्पुरुषोंकी संगति करनेवाले संतलोग स्त्री और भृत्योंके दुःख होनेपर भी यथाशक्ति दान करते हैं और अपने हित और इस लोकके धर्मको देखकर और अपने कर्मपर आरूढ रहकर सदैव वृद्धि पाते रहते हैं और अहिंसा, सत्यवचन, दया, सीधापन, द्रोह न करना,

अभिमानको त्यागना, लज्जा, क्षमा, और इन्द्रियोंको जीतना ये उन सन्तलोगोंके गुण होते हैं. और जो सन्त बुद्धिमान्, धृतिमान्, दयावान् और काम और द्वेषरहित हैं उनकी गणना लोकसाक्षियोंमें उत्तम पुरुषोंके तीन पद हैं. द्रोह न करना, दान करना और सदैव सत्य बोलना और दयावान् सन्तलोग इस लोकमें सन्तुष्ट रह-कर धर्म्मसंबंधी उत्तम गति पाते हैं और जो महात्मा शिष्टाचारी हैं और जिन्होंने धर्मका निश्चय अच्छे प्रका-रसे किया है उनके आचरण ये हैं—दूसरेके गुणोंमें दोष न लगाना, क्षमा करना, शान्तस्वरूप रहना, सन्तोष होना, प्रिय बोलना और काम क्रोधको त्यागना. शिष्टाचार शास्त्रविहित सत्पुरुषोंका उत्तम मार्ग है. धर्म्ममें प्रीति रखनेवाले मनुष्य सदैव इसी मार्गपर चलते हैं और ज्ञान-रूपी मन्दिरपर चढ़कर इस संसारके नानाप्रकारके वृत्ता-न्तोंको देखकर बड़े भयसे छूट जाते हैं और सब पुण्य और पापोंसे निश्चिन्त होकर मोक्ष पाते हैं. हे ब्राह्मण महाराज! आपके पूंछनेके अनुसार मैंने अपनी बुद्धि और शास्त्रके अनुसार शिष्टाचारके गुण कहे. इति तीसरा अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय चौथा)

मार्कंडेयजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर ! उक्त कथाको कहनेके उपरान्त उस धर्मव्याधने उस ब्रह्मणसे फिर कहा कि महाराज ! होनहार बड़ी बलवान् है और पूर्व जन्मके कियेहुये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है देखिये, यह पूर्वजन्मके पापोंकाही फल है जो मैं इस बधिकके घोर कर्मको करता हूं और यत्न करनेपरभी अपने इस दोषको दूर नहीं कर सक्ता हूं. और मैं इस कर्मके करनेमें केवल निमित्तमात्र हूं. क्योंकि जिन मारेहुये जवोंका मांस मैं बेचता हूं उनके मांसको भक्षण करनेमें धर्म होता है और उस मांससे देवता, अतिथि, भृत्य और पितरोंका पूजनभी होता है. वेदकी यह श्रुति सुनी जाती है कि-औषध, पशु, मृग, पक्षी और अन्न सब पदार्थ मनुष्यके भोजनके लिये निर्मित हैं. देखो. उशीनरके पुत्र राजा शिबिने अपना मांसदान करनेसे स्वर्गलोक पाया था और पूर्वकालमें राजा रन्तिदेवके रसोईके घरमें दो सहस्र पशु नित्य मारे जाते थे और मांससहित

अन्नदान करनेके कारणसे उस राजा रन्तिदेवकी बड़ी कीर्ति संसारमें हुई थी और उसके यहां चातुर्मासमें नित्य पशु मारे जाते थे. यह भी श्रुति सुनी जाती है कि अग्निभी मांसही चाहते हैं. देखो, यज्ञोंमें ब्राह्मणलोग पशुओंको मंत्रोंसे संस्कृत करके सदैव मारा करते थे उन्होंनेभी स्वर्ग पाया था. जो पूर्वकालमें अग्निदेव मासकी इच्छा न करते तौ मांस कोई नहीं खाता और मुनिलोगोंने अबभी मांसभक्षण करनेकी यह विधि कही है कि जो पुरुष विधि और श्राद्धके अनुसार देवता और पितृओंको देकर मांस खाता है उसको मांसभक्षण करनेका दोष नहीं होता है और श्रुतिभी ऐसी सुनी जाती है कि-उक्त प्रकारसे मांस खाना मांसभक्षणमें नहीं गिना जाता है और जो ब्राह्मण स्त्रीके पास ऋतुकालमें जाता है, और समय नहीं जाता है वह ब्रह्मचारी है. सत्यज्ञानके मार्गका विचार करके मांसका भक्षण कहा गया है देखो राजा सौदासने शापके अभिभूत होकर बहुतसे मनुष्योंको मारकर उनका मांस भक्षण किया था. ऐसी अवस्थामें मैंने यह विचार करा कि यह मेरा धर्म है इसीसे इस कर्म्मको नहीं छोडता हूं और इसको अपने पूर्वजन्मके किये हुये कर्मोंका फल

जानकर मांस बेच कर अपना पेट पालता हूं. अपने धर्मको छोडना बड़ा अधर्म है इससे अपने कर्ममें रत रहनाही धर्म है. कर्मका निर्णय करनेमें ईश्वरकी यह विधि बहुधा देखी गई है कि पूर्वजन्ममें किये हुये कर्मका फल देहधारीको अवश्य मिलता है. क्रूरकर्मी पुरुषको अपनी बुद्धिसे यह बात विचारना उचित है कि-मैं शुभ कर्म किस प्रकारसे करूं जिससे पराभवसे छूटी जाऊं. ऐसा विचार करनेपर उसको उस कर्मके निर्णय करनेमें बहुत प्रकारकी बातैं दीखैंगी तब वह कहेगा कि-मैं दान देता हूं, सत्य बोलता हूं, गुरुकी सेवा करता हूं, ब्राह्मणोंका पूजन करता हूं धर्ममें, निरत रहता हूं और अभिमान और अतिवाद नहीं करता हूं परन्तु उपजीवनके लिये क्या कर्म किया जाय? बहुतसे मनुष्य कहते हैं कि-खेतीसे जीविका उत्पन्न करना बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु उसमें बड़ी हिंसा होती है. क्योंकि हल चलाने और पृथ्वीपर सोनेमें बहुतसे जीव मारे जाते हैं इसके सिवाय चावल आदि धान्य और बीज जो खाये जाते हैं वेभी तो जीवही हैं सो जैसे उनको काटकर खाते हैं उसी प्रकारसे पशुओंको भी मारकर भक्षण करते हैं और मनुष्य, वृक्ष और औषधियोंको

भी काटते हैं उनमें भी बहुतसे जीव रहते हैं और जलभी जीवोंसे भराहुआ है ऐसी व्यवस्थामें तुम क्या विचार करोगे? सिवाय इसके कछु नहीं कि-इस जगतमें सब जीव एक दूसरेका आहार है. देखो मछली मछलीको खा लेती है और बहुतसे और जीव ऐसे हैं जिनका भक्ष्य सिवाय दूसरे जीवके और कुछ नहीं है इससे सिवाय इस बातके और क्या जाना जा सक्ता है? एक प्राणी दूसरे प्राणीको भक्षण करनेवाला है. पृथ्वी और आकाशमें कोई स्थान ऐसा नहीं है जो जीवोंसे खाली होवै सो मनुष्य चलते फिरते उठते बैठते और सोतेमें अनेक जीवोंको मारडालते हैं इससे यह विदित होता है कि-मनुष्य हिंसासें बच नहीं सक्ता है और संसारमें कोई जीव अहिंसक नहीं है. पूर्व कालमें यह अहिंसाका शब्द केवल विस्मित मनुष्योंने कहा है. यतीलोग भी हिंसासे बचेहुये नहीं है वे भी हिंसा करते हैं. परंतु यहाँ यत्न करनेसे हिंसा कम हो सक्ती है. देखो, जो लोग अच्छे कुलोंमें उत्पन्न होते हैं और गुणवान् होते हैं वेभी घोर कर्म करते हैं और उन कर्मोंके करनेपर लज्जा नहीं करते हैं. देखो मित्र मित्रको और शत्रु शत्रुको अच्छे मार्गमें प्रवृत्त देखकर देख नहीं सक्ते हैं

और एक भाई दूसरेको बढ़ा हुआ देखकर प्रसन्न नहीं होता है उसी प्रकारसे पण्डिताईके अभिमानसे अज्ञानी लोग गुरुओंकी भी निन्दा करते हैं इस प्रकारसे इस संसारमें धर्म और अधर्मसे युक्त बहुतसी बातैं दीखती हैं. उनमें धर्म और धर्मका विचार करके कोई पार नहीं पा सक्ता है. इससे जो मनुष्य अपने धर्म और कर्ममें निरत रहता है वही सुयश पाता है. इति चौथा अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय पांचवा)

मार्कंडेयजी बोले कि-हे राजा युधिष्ठिर! इसके उपरान्त उस धर्मव्याधने उस श्रेष्ठ ब्राह्मणसे फिर कहा कि-हे महाराज! राजधर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म अनेक शाखा रखनेवाली और अनंत है और वेदमें उसका प्रमाण और वृद्धोंका उपदेश इस प्रकारसे है कि-प्राणोंके मारे जाने और विवाहके समय झूठ बोलना सत्यकी समान है झूठ नहीं है और जिस विपरीत कर्मसे जीवोंका परम हित होता हो वह कर्म भी निश्चय सत्य है. इसीमें धर्मकी सूक्ष्म गतिको देख

लो. मनुष्यको शुभ और अशुभ कर्मोंका फल निश्चय मिलता है. उसमें जो पण्डित नहीं होता वह अपने कर्म-दोषको न जानकर दुःख पानेपर देवताओंकी निन्दा करता है और अज्ञानी, कपटी और चपल पुरुषोंको दुःख और सुखका विपर्यास सदैव होता रहता है. उसको बुद्धि, गुरु, शिक्षा और पौरुष रोक नहीं सक्ते हैं और जो पौरुषका फल दूसरेके आधीन न होता तौ मनुष्य जिस कामनाको चाहता वही पूरी होती है. देखो, संतलोग जो सावधान चतुर बुद्धिमान् और उपाधिरहित हैं कोई कर्म नहीं करते हैं. बहुतसे मनुष्य निरन्तर प्राणियोंकी हिंसा करनेमें लगे रहते हैं. बहुतसे जगत्को ठगते फिरते हैं और सुखसे रहते हैं और बहुतसे कोई काम नहीं करते हैं और लक्ष्मीवान् होते हैं. बहुतसे ऐसेभी हैं कि अनेक कर्म करते हैं परन्तु उनकी कामना पूरी नहीं होती है; बहुतसे मनुष्य पुत्रके लिये देवताओंकी पूजा और तप करते हैं और फिर दश महीने गर्भधारण करनेपर उनके कुलकलंकी पुत्र उत्पन्न होते हैं और बहुतसे मंगलके साथ उत्पन्न होते हैं और बाप दादेके इकट्ठा किये हुये ऐश्वर्यको भोगते हैं और मनुष्यके जो रोग उत्पन्न होते हैं वे निस्स-

न्देह कर्महीसे उत्पन्न होते हैं और मनुष्यको उन रोगोंसे इस प्रकारसे पीड़ा होती है जैसे व्याध से मृग पीड़ित होते हैं उन रोगोंको कुशल वैद्य औषधियोंसे दूरकर देते हैं. बहुतसे ऐसेभी हैं कि उनके पास सब उत्तम पदार्थ भोगनेको हैं परन्तु उनको ऐसे रोग लगे हुये हैं कि वे उन पदार्थोंको भोग नहीं सक्ते हैं और बहुतसे भुजाका बल रखनेपर भी क्लेश पाते हैं यहांतक कि भोजनभी दुःखसे मिलता है इस प्रकारसे यह सहायहीन संसार पूर्वकर्मोंके कारणसे मोह, शोक और आधि व्याधिसे-व्याप्त है परन्तु वशित्वके होनेसे मनुष्य न मरता है, न वृद्ध होता है और न अप्रिय प्राप्त करता है. किन्तु उसकी सब कामना पूरी होती है और उसकी इच्छा सब लोगोंके ऊपर ऊपर जानेकी रहती है. हां, जो लोग अपनी शक्तिके अनुसार यत्न करते हैं उनको वैसा नहीं होता है. बहुतसे मनुष्योंके नक्षत्र और मंगलीय ग्रह एकसे होते हैं परन्तु उनकी कर्मसंधिसे फल एकसा नहीं मिलता है. कोई मनुष्य अपने आप मिलीहुई वस्तुका स्वामी नहीं है अर्थात् बिनायत्न कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती है. इससे संसारमें कार्यकी सिद्धि बिना कर्म किये नहीं होती है. वेदके अनुसार मनु-

ष्यका शरीर नाशमान और जीव सनातन है सो मरनेपर मनुष्यके शरीरका तो नाश हो जाता है परन्तु जीवात्मा कर्मके बन्धनसे बँधाहुआ दूसरी योनिमें जाकर जन्म ले लेता है. यह सुनकर ब्राह्मण बोला कि-जीव किस प्रकारसे सनातन है मैं इस बातको तत्वपूर्वक जानना चाहता हूं. व्याध बोला कि-अज्ञानी लोग जो यह कहते हैं कि-फलाना मर गया यह मिथ्या है. जीवका नाश कभी नहीं होता है किन्तु वह देहान्तरमें चला जाता है सो जीवके देह बदलनेकाही नाम पंचतत्व है. इस संसारमें कर्मका नाश नहीं होता है और उसको कर्ताके सिवाय और कोई नहीं भोगता है इससे जब मनुष्य अपने कर्मानुसार दूसरा जन्म लेता है तब पापी, नीचकर्मी और पुण्यात्मा, पुण्यकर्मी होता है. ब्राह्मण बोला कि-वह जीवयोनिमें किस प्रकारसे जन्म लेता है और पुण्य और पापके अनुसार पवित्र और अपवित्र जातिमें कैसे प्राप्त होता है? व्याध बोला कि-यह कर्म गर्भाधानसे सम्बन्ध रखता हुवा जान पड़ता है. इसका वृत्तान्त संक्षेपरीतिसे इस प्रकारसे है कि-जब जीव जन्म लेनेको होता है तब कर्मके अनुसार पापी पापयोनिमें और पुण्यात्मा पुण्ययोनिमें उत्पन्न होता

है. जो केवल पुण्यकर्मही करनेवाला है उसको देवभाव मिलता है और जो पाप और पुण्य दोनोंका कर्ता है वह मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है और जिसने केवल तामस कर्मही किये हैं वह नीच योनियोंमें उत्पन्न होकर नरकगामी और पापी होता है और कर्मके बन्धनसे बँधा हुवा होनेके कारणसे जन्म, मृत्यु और वुढ़ापेके दुःखोंको उठाता हुआ पशु, पक्षी और कीड़ा मकोड़ोंकी अनेक योनियोंमें जन्म लेकर नरक भोगताहुआ चक्कर खाया करता है अर्थात् यह जीव कर्मानुसार अपवित्र योनिमें जन्म लेकर दुःख भोगकर जब दूसरा जन्म लेता है तब उस जन्ममें नवीन कर्म्मोंको करके इस प्रकारसे उन कर्मोंसे जन्मजन्मान्तरोंमें पीड़ा पाता है जैसे रोगी कुपथ्य खाकर रोगको बढ़ाकर दुःखी होता है और निरन्तर दुःख आनेपरभी अपनेको दुःखरहित और सुखी मानता है. इस प्रकारसे वह कर्मोंसे शुद्ध होनेपर भी बन्धनसे नहीं छूटता है और दुःखी होकर इस संसारमें चक्रकी समान घूमा करता है और जब वही मनुष्य कर्मोंसे शुद्ध होकर बन्धनसे छूट जाता है तब तपस्या आदि कर्म करता है और उन कर्म्मोंके प्रभावसे बन्धनसे छूटकर और शुद्ध

होकर उन लोकोंको पाता है जिनमें शुभकर्मी मनुष्य जाते हैं और वहां चिन्तारहित होकर, सुख भोगता है. पापी मनुष्यके पापकर्म्मको करते करते उस पापका अन्त नहीं जा सक्ता है इससे मनुष्यको पापकर्म त्यागकर पुण्यकर्म करना उचित है. जो मनुष्य दूसरेके गुणोंमें दोष नहीं लगाता है और कृतज्ञ होता है उसका सर्वथा कल्याण होता है और वह सुख, धर्म, अर्थ और स्वर्गलोग पाता है और जिस मनुष्यने विषयोंसे इन्द्रियोंको जीत लिया है और शौच आदि कर्म किये हैं और मनको वश कर लिया है वह ज्ञानी इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख पाता है. इससे मनुष्यको उचित है कि-सत्पुरुषोंके धर्मपर चलै. शिष्ट लोगोंकी की हुई क्रियाओंको करै और अपनी आजीविका विना किसीको क्लेश दियें उपार्जन करै. उपदेशकर्त्ता ऐसे होने चाहिये जो शास्त्रमें विज्ञानी और विचक्षण हों और उचित आचारसे कोई क्रिया करनेसे धर्म नष्ट नहीं होता है. ज्ञानी लोग केवल धर्मही करते और धर्महीसे अपनी जीविका उत्पन्न करते हैं और उस धर्म्मसे उत्पन्न कियेहुए धनसम्पादन आदि कर्मोंसे धर्मकीही जड़को सिंचते हैं और फिर उस धर्मके

गुणको देखते हैं. इस प्रकारसे धर्म करनेवालेका चित्त प्र-
सन्न रहता है और इस लोकमें उसका चित्त मित्रवर्गोंमें
सन्तुष्ट और परलोकमें सुख पाता है और उसको प्रभुता
भी मिलती है. धर्मका यही फल है. धर्मात्मा उस फलको
पाकर सन्तोष नहीं करते हैं अर्थात् धर्मसे तृप्त न होकर
फिर धर्मही करते हैं और धर्मसे तृप्त न होनेके कारणसे
वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और उस वैराग्यके कारणसे
फिर वह राग और द्वेष आदि दोषोंके वशमें नहीं हो
सक्ता है और धर्मको न छोड़कर वैराग्यमें तत्पर रहता है
और संसारको नाशवान् जानकर सब पदार्थोंको त्याग
करनेका यत्न करता है और केवल देवके आश्रयपर न
रहकर मोक्ष पानेका यत्न करता है. इस प्रकारसे मनुष्य
पापकर्मोंको छोड़कर वैरागी हो जाता है और धार्मिक
होकर मोक्ष पाता है. सो मोक्षका साधन जीवका तप अ-
र्थात् ज्ञान है और उस ज्ञानकी मूल इन्द्रियोंको वशमें
करना है जिसको शम और दम कहते हैं यह इन्द्रियोंका
निरोध और सत्य और दम ऐसे धर्म हैं कि-इनसे मनु-
ष्यको परम पद-जिसको ब्रह्मपद कहते हैं वह-मिलता है
और मनुष्यकी सब कामना पूरी होती है. यह सुनकर

ब्राह्मणने उस व्याधसे पूंछा कि-श्रेष्ठ धर्मी इन्द्रिय क्या पदार्थ हैं, उनका निग्रह क्योंकर होता है और उस निग्रहका क्या फल है और वह फल कैसे मिलता है? कृपा करके यह सब तत्वपूर्वक कहिये. मैंभी इसको जानना चाहता हूं. इति पांचवा अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय छठवा)

मार्कंडेयजी बोले कि-हे राजा युधिष्ठिर! ब्राह्मणके उक्तप्रकारसे पूछनेपर धर्मव्याधने उत्तर दिया उसको सुनो. धर्मव्याध बोला कि-हे विप्र! मनुष्योंका मन पहिले विज्ञानके लिये प्रवृत्त होता है जब ज्ञान हो जाता है तब काम और क्रोध आकर वर्तमान हो जाते हैं उसने उसे अर्थके लिये यत्न करना पड़ता है और वह बड़े बड़े कामोंको प्रारंभ कर देता है और गंध आदि अनेक इष्ट पदार्थोंका अभ्यासी हो जाता है. इष्ट पदार्थोंका अभ्यासी होनेसे राग उत्पन्न हो जाता है और उस रागसे द्वेष और द्वेषसे लोभ और लोभसे मोह प्रगट हो जाते हैं इस

प्रकारसे जब मनुष्यकी बुद्धि लोभसे आविर्भूत और राग-द्वेषसे हत हो जाती है तब मनुष्य दंभसे धर्म करने लगता है इससे फिर उसकी रुचि दम्भतासे धन उत्पन्न करनेकी हो जाती है और दंभके उपायोंसे धन मिलनेपर उसको दंभही अच्छा लगता है और फिर वह सुहृद और पण्डितोंसे रोके जानेपरभी पापही करना चाहता है और सबको वेदका प्रणाम देकर उत्तर देता है. यद्यपि अपना बर्ताव उसपर नहीं रखता है और फिर वह राग और द्वेषसे उत्पन्न हुये तीन प्रकारके अधर्मोंपर चलने लगता है पापकर्मका शोच पापकर्मनाकीही बात चित करना और पापही करना इन अधर्मोंमें प्रवृत्त होनेपर उस मनुष्यके सब साधुगुण नष्ट हो जाते हैं और जो पापकर्मी मनुष्य, अपनेतुल्य शीलवान् पुरुषोंसे मित्रता करते हैं वेभी दुःख पाते हैं और परलोकमें आपत्ति भोगते हैं. यह तो पापियोंकी गति है. अब धर्मात्माओंका वृत्तान्त सुनो जो मनुष्य पहिलेहीसे उक्त दोषोंको जानकर त्याग कर देता है और उन दोषोंके सुख और दुःखको समझकर साधुओंकी संगति करता है उसकी बुद्धि धर्मसे विपरीत नहीं होती है और वह जो कुछ काम प्रारंभ करता है वह सब अच्छा

ही होता है. यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि-हे व्याध! तुह्मारे वाक्य बड़े प्यारे और धर्मयुक्त हैं. मेरी समझमें तुह्मारे समान वक्ता नहीं है इससे मैं जानता हूं कि-तुम दिव्यप्रभाव रखनेवाले महाऋषि हो. धर्मव्याध बोला कि-हे महाराज महाभाग! ब्राह्मण और पितर सबसे प्रथम भोजन करते हैं इससे ज्ञानी मनुष्यको अपने सब शरीरसे उन दोनोंका प्रिय करना उचित है. उस प्रियको मैं तुमसे ब्राह्मणोंको नमस्कार करके कहता हूं. उसका नाम ब्राह्मी विद्या है. सुनो, यह विश्व जगत्‌ही सर्व रूप और कर्मसे अलभ्य है और यही महाभूतात्मक ब्रह्म है जिससे परे कोई नहीं हैं और पांच महाभूत है अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी और उन पांचोंके पांच गुण हैं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध और छठा चैतन्य स्वरूप मन, सातवीं बुद्धि, आठवा अहंकार और नववीं, दशवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं, पांचों इन्द्रियां, चौदहवां जीवात्मा, पन्द्रहवां सतोगुण, सोलहवां रजोगुण, और सत्रहवां तमोगुण इन सत्रहोंकी अव्यक्त संज्ञा है. ये सब व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप इन्द्रियार्थ हैं अर्थात् बाहर और भीतरकी इन्द्रियोंके ग्राह्य

हैं और इनमें व्यक्त और अव्यक्तमय चौवीस गुण हैं अर्थात् उक्त अव्यक्तसंज्ञक सत्रह नामोंकी राशिमेंसे जो बाहरकी इन्द्रियोंके ग्रहण योग्य हैं और जो भीतरकी इन्द्रियोंके ग्राह्य हैं उन दोनोंमें चौवीस गुण हैं और इनसे जो विविक्त है उसीका नाम ब्रह्म है. हे ब्राह्मण! जो कुछ तुमने पूंछा था वह सब हम सुना चुके और अब आप क्या सुनना चाहते हो? इति छठवां अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय सातवां)

मार्कंडेयजी बोले कि-हे युधिष्ठिर! धर्मव्याधके उक्त बचनोंको सुनकर उस ब्राह्मणने पूछा कि-हे श्रेष्ठधर्मी! मैं पांचों महाभूतोंके गुणोंको पृथक् पृथक् सुना चाहता हूं. आप कृपा करके वर्णन कीजिये. व्याध बोला-बहुत श्रेष्ठ. सुनिये, पृथ्वी, ज़ल, तेज, वायु और आकाश इन पांचोंको पंचमहाभूत कहते हैं. गुण उनके ये हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध ये पांच गुण पृथ्वीमें हैं और शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये गुण जलमें हैं और शब्द, स्पर्श और

रूप ये तीनों अग्निके गुण हैं. और वायुमें दोही गुण हैं, शब्द और स्पर्श, और आकाशमें केवल एकही गुण है अर्थात्, शब्द. इस प्रकारसे पांचो भूतोंमें सब पन्द्रह गुण हैं और ये पन्द्रहों गुण सब संसारी जीवोंके शरीरमें बसते हैं जिसके कारणसे यह संसार स्थित है और एक दूसरेके बिना रह नहीं सकते हैं और जब जीवात्मा इनको त्याग देता है तब शरीरका नाश हो जाता है और जीवात्मा कालसे दूसरी देह धारण कर लेता है इस प्रकारसे इस संसारमें क्रमपूर्वक जीवन और मरण हुआ करता है और जहां देखिये तहांही वीर्य आदि पंचतत्वसे उत्पन्न हुई धातुयें दीखती हैं जिनसे यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है. जो कर्म इन्द्रियोंसे किये जाते हैं उनको व्यक्त कहते हैं और जिनको इन्द्रियां नहीं करती हैं किंतु लिंग-शरीरसे ग्रहण किये जाते हैं वे अव्यक्त कहलाते हैं. जब मनुष्य शब्दादि वियोगोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंको रोककर तपस्या करता है तब उसको आत्मा लोकमें व्याप्त और लोक आत्मामें व्याप्त दिखाई देने लगता है और ब्रह्मज्ञानी होनेके कारणसे उसे कर्म करनेपरभी सब भूत दिखाई देते हैं और फिर उस सदा और सब अव-

स्थाओंमें सब प्राणियोंको देखनेवाले ब्रह्मरूप पुरुषको पाप और पुण्यका फल नहीं होता है. क्लेशकी मूल अविद्या है इससे मनुष्यको ज्ञानमार्गमें विद्याका वश करना अवश्य है. भगवान्‌ने जीवन्मुक्त आत्माको आदिअन्तरहित, आत्मयोनि, अविनाशी, अमूर्त्ति और उपमारहितहीं कहा है. सो हे ब्राह्मण! इस सर्वका मूल तपस्या है और तपस्याविना इन्द्रियोंको वशमें किये नहीं होसक्ती है. इन्द्रियांही स्वर्ग और नरकको लेजानेवाली हैं क्योंकि-इन्द्रियोंका निरोध करके तप करनेसे स्वर्ग और इन्द्रियोंको विषयोंमें लिप्त करनेसे नरक प्राप्त होता है. यह सब योगकी विधि है. तप और स्वर्ग और नरक सबकी मूल इन्द्रियांही है. इनको प्रसंग करनेसे निस्सन्देह दोष उत्पन्न होजाते हैं और इनके निरोधसे परम सिद्धि प्राप्त होती है जो कोई शरीरकी छः इन्द्रियोंको जीतकर अपने वशमें कर लेता है वह पाप और अनर्थके फलको नहीं भोगता हे ब्राह्मण! तुम इस शरीरको रथ समझो और आत्माको रथी और इंद्रियोंको रथके घोड़े जानो. सो जो मनुष्य सावधान, धैर्यधारी और कुशल होता है वह उस रथके घोडोंको शुद्ध मार्गमें हांकता हुआ सुखपूर्वक जाता है और जिसको बुद्धिमें उक्त अश्वरूपी

छः चंचल इन्द्रियोंकी वागडोर थांभना आता है वही इस शरीररूपी रथका उत्तम सारथी है. प्रयोजन यह है कि-जैसे रथके घोड़ोंको हांकनेपर जो मनुष्य उनको जहां चाहे तहां रोक सक्ता है और जिधर चाहे उधर मोड़ सक्ता है उसीको समझना चाहिये कि-यह घोड़ोंको वशमें कर सक्ता है. इसी प्रकारसे अश्वरूपी इन्द्रियोंकोभी जो रोक सक्ता है वही उनको जीत सक्ता है और जिस पुरुषका मन इन घूमनेवाली इन्द्रियोंके पीछे पीछे लगा फिरता है उसकी बुद्धि इस प्रकारसे नष्ट हो जाती है कि-जैसे जलमें वायुसे नाव नहीं चली जाती है. रागी मनुष्य शब्द आदि इन्द्रियोंके छः विषयोंको अच्छा जानकर उनमें लिप्त होकर दुःख पाता है और विरागी उन्ही विषयोंको सिद्धान्तपूर्वक त्यागकर आत्माको जगत्मय और जगत्को आत्मामय समझकर अपनी ज्ञानदृष्टिसे सर्व व्यापी ब्रह्मको ध्यान करनेके कारणसे परम पद पाता है. इति सातवां अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय आठवां)
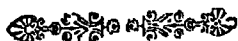
मार्कंडेयजी बोले कि-हे राजा युधिष्ठिर ! जब वह धर्म-

व्याध उक्त प्रकारसे सूक्ष्म ब्रह्मका वृत्तांत कह चुका तब उस ब्राह्मणने फिर सूक्ष्म ब्रह्महीका हाल पूछा और कहा कि-आप कृपा करके सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों गुणोंका वृत्तान्त तत्वपूर्वक कथन कीजिये. धर्मव्याध बोला कि-बहुत श्रेष्ठ मुनिये मैं तीनो गुणोंको पृथक् पृथक् कहता हूं. इन तीनोंमें तमोगुण मोहरूपी है, रजोगुण मोहमें प्रवृत्त करनेवाला है और सतोगुण प्रकाशमान और श्रेष्ठ है. शील स्वभावका स्वप्नवत् होना, अविद्या बहुत होना, ज्ञानका नाम न जानना, किसी बातका चेत न रखना, इंद्रियोंको खोटेमार्गोंमें लगाना और क्रोध बहुत करना ये तामसी मनुष्यके लक्षण हैं और अपनी बातको प्रवृत्त करना, मंत्री होना, दूसरेके दोषको न देखना, तृष्णा बहुत रखना, किसीको नमस्कार आदि न करना और अभिमान बहुत करना, रजोगुणी अर्थात् राजसी मनुष्यके लक्षण हैं, और ज्ञानको बहुत प्रकारसे जानना, धीर रखना, लोभ न करना, दूसरेके दोषको न देखना, क्रोध न करना और इंद्रियोंको जीतना ये सतोगुणी अर्थात् सात्विकी पुरुषोंके लक्षण हैं. सात्विकी मनुष्यको हृदयमें ज्ञानके आनेपर लोकवृत्तसे क्लेश होता है

परंतु जब वह ब्रह्मको जान लेता है तब लोकवृत्तकी निन्दा करने लगता है और उसका अहंकार मृदु और अकौटिल्य शुद्ध हो जाता है और उसके हृदयमें विरागीके लक्षण पहिलेसेही आकर वर्तमान हो जाते हैं और उसको फिर द्वंद्व अर्थात् मान और अपमान होनेका विचार नहीं रहता है और न किसी बातका संशय होता है. सद्गुणोंको ग्रहण करनेसे शूद्रभी वैश्य और क्षत्री हो सक्ता है और और आर्जवपर चलनेवालेको ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है. हे ब्राह्मण! ये सब गुण हम तुमसे कह चुके अब और क्या सुना चाहते हो सो आप कहिये मैं वर्णन करूं. इति आठवां अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय नववा)

ब्राह्मण बोला कि हे धर्मव्याध! अब मैं यह सुना चाहता हूं कि अग्नि पृथ्वीसम्बन्धी धातुमें प्राप्त होकर शरीरकी अभिमानी क्योंकर होती है और शरीरको नाडियोंके मार्गसे किस प्रकारसे चेष्टित करती है? मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! उक्त प्रश्नको सुनकर धर्मव्याध

कहने लगा कि अग्नि मूर्द्धामें वसकर देहका पालन करती है और प्राण अग्नि और मूर्द्धामें रहकर चेष्टित रही है. भूत भविष्य और वर्तमान ये तीनों प्राणमेंही स्थित हैं. सब भूतोंमें प्राणही श्रेष्ठ है. उसी ब्रह्मयोनि प्राणकी हम उपासना करते हैं. वही सब भूतोंका कार्य-कारणरूप आत्मा है, वही सनातन पुरुष है और वही महाबुद्धि और अहंकार और प्राणियोंका विषय है और देहके भीतर और बाहरकी इन्द्रियोंका पालन करनेवाला है अर्थात् इन्द्रियां उसीके प्रभावसे चैतन्य है और बस्ति नाभि और गुदामें अग्निमें आश्रित होकर अपान नाम वायु रहती है जो मूत्र और विष्ठाके बाहर निकाल देती है और कंठमें उदान वायु रहती है और उसका काम चलना फिरना बोझ उठाना और यत्न करना है और सर्वांगकी संधि संधिमें व्यान नाम वायु है और जो वायु अग्नि और धातुगत है उसका नाम समान है. जो अन्न आदि रस और त्वचा आदि धातु और पित्त आदि दोषोंको परिणाम देतीहुई घूमा करती है . छे वायुओंके आपसमें मिलनेसे एक उष्मा उत्पन्न ा है उसको जठराग्नि कहते हैं वही प्राणियोंके भोजनको पचाती है और जब प्राण और अपानवायु समान

और उदान वायुमें आ मिलती है तब अग्नि उनसे युक्त होकर इस शरीरको वृद्धावस्था आदि परिणामोंको पहुँचाती है और वायुसे उत्पन्न अग्नि अपानवायुसे मिलकर पचेहुये अन्नको गिरा देती है. अग्निके वेगको ले जानेवाली प्राणवायु गुदामें प्रवेश होकर अपान वायुको ताडित करती है और फिर ऊपरको उछलकर अग्निमें आ मिलती है. नाभिके नीचे पक्व अन्नका स्थान और ऊपर आमाशय अर्थात् अपक्व अन्नका आशय है और बीचमें प्राण आदि सब वायुओंके रहनेका स्थान है और तिरछी ऊंची और नीची नाडियां जो देहमें फैली हुई हैं उस पकेहुये अन्नके रसको, प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, कूर्म, कृकल, नाग, देवदत्त और धनंजय नामी दशो वायुओंके द्वारा शरीरके सब स्थानोंमें पहुँचाती है. यह योगियोंका मार्ग है. इसीके द्वारा समदर्शी और धीर योगी लोग परब्रह्मको प्राप्त होते हैं और प्राणोंको मूर्द्धामें चढा लेते हैं इस प्रकारसे प्राण और अपानवायु सब शरीरमें व्याप्त है. इस स्थूल शरीरमें ग्यारह विकार अर्थात् दश इन्द्रियां और एक मन और सोलह कला और संभार अर्थात् श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय,

मन, अन्न, वीर्य, तप, मंत्र, कर्म और लोक हैं और उसमें जो अग्नि सदा स्थित रहती है वही आत्मा है. योगीलोग उसीको जीतकर वशमें करते हैं और उस स्थूल शरीरको प्रकाश करनेवाली अग्निमें जो देवता इस प्रकारसे रहती है जैसे कमलपर जलकी बुंद वही सतोगुण, रजोगुण और तमोगुणयुक्त क्षेत्रज्ञ जीव है और जो निर्गुण है अर्थात् जिसमें उक्त तीनो गुणोंमेंसे कोई गुण नहीं है वह परमात्मा है. जीव और परमात्मा बिम्ब और प्रतिबिम्बकी समान है. जीव चैतन्य और गुणमय और सबको चेष्टित करनेवाला है और जो उससे परे हैं उसको क्षेत्रके जाननेवाले सातौ भुवनोंका रचनेवाला कहते हैं इस प्रकारसे वह भूतात्मा सब भूतोंमें अपना प्रकाश कर रहा है और ज्ञानीलोग उसको अपनी सूक्ष्म और उत्तम बुद्धिसे देखते हैं जो मनुष्य चित्तको शुद्ध करके सब शुभ और अशुभ कर्मोंको छोड़ देता है वह प्रसन्नतासे आत्मामें स्थित होकर मोक्ष पाता है. जिस प्रकार मनुष्य तृप्त होकर सुखपूर्वक सोता है और जैसे निर्वातस्थानमें जलाया हुआ दीपक अच्छा प्रकाश करता है उसी प्रकारसे जो थोडा आहार करनेवाला मनुष्य अपने चित्तको

शुद्ध करके पिछली और अगली रात्रिमें मन लगाकर अपने हृदयमें ब्रह्मका ध्यान करता है वह मनरूपी दीपकसे निर्गुण आत्माको अपने शरीरमें निरन्तर देखता है और संसारसे मुक्त हो जाता है. लोभ और क्रोधको वशमें करना सब उपायोंसे उत्तम तप है और संसारसे उद्धार करनेके लिये बड़ा सुन्दर मार्ग है. तपको क्रोध और धर्म और झूठसे विद्याको मान और अपमानसे और आत्माको प्रमादसे रक्षा करना अवश्य उचित है. अहिंसा बड़ा धर्म, क्षमा बड़ा बल, आत्मज्ञान परमज्ञान और सत्य बड़ा व्रत है. सत्य बोलना बड़ा उत्तम पदार्थ है और बड़ा कल्याणकारी और हितकारी है मनुष्य किसी क्रियाका आरंभ बिना आशा और बंधनके करता है और जो होम इत्यादि बिना फल चाहे करता है वह बड़ा त्यागी और बुद्धिमान् है इससे इस योगको सुनावे नहीं किन्तु इसके सिद्ध करनेका यत्न करै और चित्तके योग और वियोगको ब्रह्मयोग जानो. मनुष्यको उचित है कि-हिंसा न करै, किसीसे वैर न करै और सबसे मित्रता रक्खे. अपने पास कुछ न रखना, सन्तोष करना, निराशित्व होना, चपलता न करना यही परम ज्ञान और उत्तम आत्मज्ञान है. सब संगतोंको छोड़कर

नियत व्रत होकर रहनेसे मनुष्यको परलोकमें शोकरहित औ
र निश्चलस्थान मिलता है.तपस्वी, जितेन्द्रिय, शुद्ध अंतः-
करण, सत्संगी ज्ञानी और, अजितको जीतनेकी इच्छा
रखनेवालेको इस ज्ञानकी भावना करना उचित है. गु-
णको अगुण जानना, किसीका संग न रखना, एकही
कार्य अर्थात् ब्रह्मका चिन्तन करना और अन्तर न रखना
यह ब्रह्मज्ञानकी वृत्तिका एक पद सुख है. जो पुरुष सुख
दुःख और संगको छोड़ देता है वह परब्रह्मको प्राप्त होता
है. हे कौशिकजी ! जो कुछ ज्ञान मैंने सुना था तुमसे
वह सब कह सुनाया. अब तुह्मारी इच्छा और क्या सु-
ननेकी है कहो. इति नववां अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय दशवां)

मार्कंडेयजी बोले कि-हे राजा युधिष्ठिर ! जब वह
धर्मव्याध उक्त प्रकारसे मोक्षधर्म वर्णन कर चुका
तब कौशिक ब्राह्मणने प्रसन्न होकर कहा कि-हे
धर्मव्याध ! तुमने जितनी बातें कही हैं सब न्याय-

युक्त हैं मै जानताहूं कि संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जिसको तुम न जानते हो. यह सुनकर व्याध बोला कि महाराज! मैं जो धर्म करता हूं और जिस धर्मसे मैंने यह सिद्धि पाई है, उसको मैं आपको प्रत्यक्ष दिखाता हूं. उठिये, मेरे साथ घरके भीतर चलिये और मेरे माता और पिताको देखिये. यह सुनकर वह ब्राह्मण व्याधके साथ भीतर गया और वहां उसने एक बडा रमणीक और मनोहर स्थान देखा जिसमें चार कोठे बने हुयेथे और देवमंदिरकी तुल्य शोभायमान था. गन्ध वहां उत्तम आतीथी और बहुतसे बैठनेको आसन और सोनेको शयन अर्थात् सुन्दर सुन्दर पलंग इत्यादि रक्खे हुयेथे वहीं उस व्याधके माता और पिता श्वेतवस्त्र पहिरे, सुन्दर आसनोंपर भोजन आदिसे सन्तुष्ट बैठे हुये थे. उन दोनोंकों देखकर धर्मव्याधने अपना मस्तक उनके चरणोंपर रख दिया. तब वे दोनों वृद्ध बोले कि हे धर्मज्ञ पुत्र! उठ हम तेरे शौचसे प्रसन्न हैं. परमेश्वर करै. तेरी बड़ी उमर हो और धर्म तेरी सब प्रकारसे रक्षा करे. तेरी इच्छाके अनुसार तुझे ज्ञानदृष्टि होय और मेधा नामकी श्रेष्ठ बुद्धि तेरे हृदयमें रहै. हे सुपुत्र! तू हमारी पूजा समय समयपर

बहुत अच्छी तरहसे करता है और हमारे समान किसी देवताकोभी देवता नहीं जानता है. ब्राह्मणोंमें जो शम और दम अर्थात् इन्द्रिय आदिको वशमें करना होते हैं, वेभी तुझमें स्थित हैं. और उन गुणों और हम दोनोंके पूजनसे तेरे पितामह और प्रपितामहभी तुझसे बहुत प्रसन्न हैं. तू सेवा करनेमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं करता है किन्तु मन, वाणी और कर्मसे हमारी सेवा करता है और तेरी बुद्धिभी और प्रकारकी नहीं है. सो हे पुत्र ! तैंने हमारी सेवा जमदग्निके पुत्र परशुरामजीसेभी अधिक की है. परशुरामजीने भी अपने मातापिताकी ऐसीही सेवा की थी. इसके उपरान्त उस धर्मव्याधने उन दोनोंसे कौशिक ब्राह्मणके आनेका वृत्तान्त कहा, तब उन दोनोंने उस ब्राह्मणसे कुशल पूछकर उसका पूजन किया. उस ब्राह्मणने उन दोनोंके पूजनको बड़े आदरसे लिया और उनसे पूछा कि आप अपने पुत्र और भृत्य अर्थात् नौकर चाकरोंसहित प्रसन्न हैं और आरोग्य है? यह सुनकर वे वृद्ध बोले कि हे महाराज ! आपकी कृपासे हम और हमारे सब चाकर प्रसन्न हैं. और आपभी निर्विघ्नतासे आये हैं? यह सुनकर उस ब्राह्मणने प्रसन्न होकर कहा कि बहुत श्रेष्ठ

है. यही चाहिये· तदनन्तर धर्मव्याध बोला महाराज ! ये दोनों मेरे मातापिता हैं. इन्हीको मैं अपना परम देवता जानता हूं और जो कुछ पूजन इत्यादि देवताओंके निमित्त करना योग्य है वह सब मैं इनकेही अर्थ करता हूं और ये दोनों वृद्ध मेरे पूज्य इस प्रकारसे हैं जैसे इन्द्रादिक तेंतीसो कोटि देवता सब संसारके पूज्य हैं और जैसे ब्राह्मणलोग धनसंग्रह करके देवताओंको भेट कर देते हैं उसी प्रकारसे मैं इन दोनोंको अपना कमायाहुआ धन अर्पण कर देता हूं. येही मेरे परम देवता हैं मैं इनको सदैव फल, पुष्प और रत्नोंसे संतुष्ट करता रहता हूं. इन्हीको मैं अग्नि समझता हूं इन्हीको मैं चारों वेद जानता हूं येही मेरे यज्ञ हैं और येही सब कुछ हैं. प्राण, धन, स्त्री, पुत्र और सुहृद आदि जो कुछ मेरे पास है सब इन्हीके निमित्त है. इनकी पूजा मैं नित्य अपनी स्त्री और पुत्रोंसहित करता हूं मैं आप इनको स्नान कराता हूं और इनके चरण धोता हूं और आपही भोजन कराता हूं कोई बात कभी इनके प्रतिकूल होकर नहीं करता हूं किन्तु सदैव अनुकूलही रहता हूं और इनका प्रिय काम करनेमें यदि अधर्म हो तौभी वह काम मैं करता हूं. इन्हीकी

इच्छाके अनुसार करता हूं. इनका कैसाही काम हो मैं उसको धर्मही समझकर करता हूं और इनकी सेवा आलस्य छोड़कर करता हूं. हे महाराज! ऐश्वर्य चाहनेवाले मनुष्यके बड़े पांचही हैं. पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरू. जो कोई इन पांचोंको प्रसन्न रखता है उससे सब अग्नि तृप्त रहती है. गृहस्थीके लिये यह धर्म सनातन है. इति दसवां अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय ग्यारहवा)

मार्कंडेयजी बोले कि-हे युधिष्ठिर! वह धर्मव्याध उक्त प्रकारसे माता और पिताकी सेवाका हाल कहकर उस ब्राह्मणसे बोला कि-हे महाराज! आपसे जो उस पतिव्रता, जितेंद्रिया और सत्यशीला स्त्रीनें कहा था कि-तुम मिथिलापुरीमें धर्मव्याधके पास जाओ वह तुमको ज्ञान उपदेश करेगा वह सब वृत्तान्त मुझको दिव्यदृष्टिसे विदित हो गया था यह प्रभाव माता पिताकी सेवारूपी तपकाही है. ब्राह्मण बोला कि-हे धर्मज्ञ! मैं उस सत्यवती पतिव्र-

ताके बचनको याद करके अपने मनसे तुमको बड़ा गुण-
धाम समझता हूं. धर्मव्याध बोला कि-आप सत्य कहते
हैं उस पतिव्रतानें मेरा सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर आपसे मे-
रेपास आनेको कहा था और आपके अनुग्रहसे मैंनेंभी उ-
सका सब वृत्तान्त जान लिया. अब मैं आपके हितकी
बात कहता हूं. उसको आप सुनिये. आपने यह बड़ा अ-
नुचित किया है जो आप अपने माता पिताका अपमान
करके उनकी बिना आज्ञा वेद पढ़नेके लिये घरसे निक-
लकर चले आये हैं, आपके शोकमें वे दोनों प्राणी अन्धे
हो गये हैं. इससे अब तुम शीघ्र जाकर उनको अपनी
सेवासे प्रसन्न करो. तुम तपस्वी, महात्मा और धर्मात्मा हो.
तुमको इस धर्मका उल्लंघन करना उचित नहीं है बिना
मातापिताकी सेवा तुह्मारा यह सब करना निरर्थक है
इससे तुम मेरे वचनको मानकर अब शीघ्र अपने घरको
जावो और उन दोनोंको प्रसन्न करो इसको विपरीत
करना तुमको योग्य नहीं है. यह बात तुह्मारे कल्याणकी
है यह सुनकर ब्राह्मण बोला तुह्मारा कहना निस्सन्देह
सत्य है. तुम धर्मचारी हो मैं तुमपर प्रसन्न हूं. व्याध बोला
कि-हे ब्राह्मण! तुम देवताकी तुल्य हो क्योंकि जिस

धर्मको तुम करते हो वह पुण्यमय, सनातन और दिव्य है और अशुद्ध अंतःकरणवाले मनुष्योंको दुःखसे प्राप्त हो सकता है. अब तुम आलस्य छोड़कर शीघ्र अपने मातापिताके पास जाओ और उनकी पूजा करो मेरी समझमें इससे श्रेष्ठ दूसरा धर्म नहीं है. ब्राह्मण बोला कि मेरा बड़ा प्रारब्ध था जो मैं यहां आया और आपसे मेरा मिलाप हुआ आप ऐसे धर्मदर्शी मनुष्य संसारमें दुर्लभ है कहीं सहस्रोंमें एक मनुष्य धर्मात्मा होता है और सहस्रोंमें एकभी धर्मज्ञ नहीं होता है. मैं आपसे सत्यसे बहुत प्रसन्न हुआ ईश्वर करै आपका कल्याण हो. आपने मुझ नरकमें गिरेहुयेका उद्धार किया है. यह कुछ भवितव्यही था जो मुझको आपके दर्शन हुये आपने मुझ ब्राह्मणको इस प्रकारसे तारा है जैसे स्वर्गसे गिरेहुये राजा ययातिको उसके सत्पुरुषदेवताओंने तारा था अब मैं आपके कहनेके अनुसार मातापिताकी सेवा करूंगा जिन मनुष्योंका अन्तःकरण अशुद्ध होता है वे धर्मऔर अधर्मका निश्चय नहीं कर सकते हैं और शूद्रको सनातन धर्मका ऐसा ज्ञान होना जैसा आपको है बहुत दुर्लभ है. इससे मैं जानता हूं कि आप शूद्र नहीं हैं कृपा करके

अपने शूद्र होनेका वृत्तान्त तत्वपूर्वक कहिये. मैं उस सब सत्य वृत्तान्तको सुना चाहता हूं. यह सुनकर व्याध बोला कि बहुत श्रेष्ठ मेरे पूर्वजन्मके वृत्तान्तको सुनिये मैं ब्राह्मणोंके वचनको निस्संदेह उल्लंघन नहीं करता हूं. पूर्वजन्ममें मैं ब्राह्मण था और वेदपाठियोंमें बड़ा प्रवीण और वेदके अंगोंका पारगामी था. परन्तु अपने अपराधके कारणसे मैंने यह देह पाई है. वह यह है कि एक धनुर्विद्याका जाननेवाला राजा मेरा मित्र था उसके सत्संगमें मैंनेभी धनुर्विद्या परिश्रम करके सिख ली एक एक दिन वह राजा मुझको और अपने योधाको और मंत्रियोंको साथ लेकर अहेर खेलनेको गया और बनमें एक आश्रमके निकट उसने बहुतसे मृग मारे उसी समय मैंनेभी एक बाण एक मृगपर चलाया और वह बाण उस आश्रममें रहनेवाले ऋषिके जा लगा. उसके लगतेही वह ऋषि गिर पड़ा और दुःखसे पुकारकर कहने लगा कि मैंने कुछ अपराध नहीं किया मुझको मारकर यह किसने अपने ऊपर अपराध लिया है? इसके पीछे मैं उसको मृग जानकर उसके पास गया और उस तपस्वी और पृथ्वीपर पीडासे पडेहुये और चिल्लातेहुये ब्राह्मणको

अपने बाणसे बिधाहुआ देखकर महादुःखी हुआ और मैंने उससे विनय की कि महाराज! यह अपराध विना जाने मुझसे हुआ है, कृपाकरके क्षमा कीजिये तब उस ऋषिने महा क्रोधित होकर मुझको शाप दिया कि तू इस क्रूरकर्मके करनेसे शूद्रयोनि पाकर व्याध होगा. इति ग्यारहवां अध्याय सम्पूर्ण.

(अध्याय बारहवा)

धर्मव्याध बोला कि हे कौशिक महाराज! जब मुझको उस ऋषिने उक्त प्रकारसे शाप दिया तब मैंने अपनी वाणीसे उस ऋषिको प्रसन्न करके विनय की कि हे महाराज! मेरी रक्षा कीजिये. यह अपराध मुझसे अनजानमें बन पड़ा है. आप अपनी कृपासे इसको क्षमा कीजिये और मुझपर प्रसन्न हूजिये. तब उस ऋषिने मुझसे कहा कि यह हमारा शाप तौ अन्यथा नहीं हो सक्ता है परन्तु मैं तुझपर अनुग्रह करके यह वरदान देता हूं कि शूद्रयोनि पानेपरभी तू धर्मज्ञ रहैगा और अपने मातापिताकी सेवा

करैगा उस सेवासे तुझको बड़ी सिद्धि प्राप्त होगी और पूर्व जन्मका हालभी तुझको याद रहैगा और देहान्त होनेपर स्वर्गलोक पावैगा और शापके निवृत्त होनेपर फिर तू ब्राह्मणही होजायगा सो हे कौशिक! उस ऋषिने मुझको उक्त प्रकारसे शाप दिया और मेरेऊपर कृपाभी की. इसके उपरान्त मैंने उसके शरीरमेंसे बाण खेंच लिया और उसको उसके आश्रममें ले गया परन्तु वह जीता न बचा. हे कौशिक! मेरे पूर्व जन्मका यही वृत्तान्त है. अब मुझको शीघ्र स्वर्गको जाना है. ब्राह्मण बोला हे बुद्धिमान्! संसारमें सुख-दुःख मिलतेही हैं आप उत्कंठा न कीजिये तुम तत्वके ज्ञाता और धर्मपरायण हो तुमने बड़ा दुष्कर कर्म किया है यह जो कर्म तुम करते हो उसको जातिके कारणसे दोष नहीं है अब तुम कुछ काल बास करो उपरान्त तुमको ब्राह्मणदेह मिलैगी अबसे मैं तुमको निश्चय ब्राह्मण मानता हूं क्योंकि जो ब्राह्मण ज्ञानी है परन्तु कर्म्म उसके विपरीत और खोटे हैं और वह मानी पाखंड और कुकर्मी है तो वह शूद्रहीकी समान है और जो शूद्र जितेन्द्रिय सत्यवादी और धर्मात्मा है उसको मैं ब्राह्मणही जानता हूं. क्योंकि कर्महीसे शूद्र और ब्राह्मण है. खोटे कर्म करनेसे सबकोही

दुर्गति मिलती है मेरी समझमें तुम सब प्रकारसे दोषरहित हो इससे तुमको किसी प्रकारका शोक करना उचित नहीं है. तुमसे धर्मात्मा जो संसारी और परलोकसंबन्धी धर्मके ज्ञाता हैं कभी विषाद नहीं करते हैं. यह सुनकर धर्मव्याध बोला कि विज्ञानीलोग मनके दुःखको ज्ञानसे और शरीरकी पीडाको औषधीसे दूर करदेते हैं और जो अल्पबुद्धि होते हैं वे अनिष्टके आने और प्रियके चलेजानेसे मानसी दुःख उठाते हैं सो यह सुखदुःख अथवा वियोगका मिलना न मिलना एकहीके साथ नहीं है किंतु-सब प्राणियोंके साथ लगाहुआ है इससे शोच करनेसे दुःखके सिवाय कुछ नहीं मिलता है जो लोग सुख और दुःख दोनोंको त्यागकर देते हैं वेभी बुद्धिमान् और ज्ञानी हैं और उन्हीकी वृद्धि होती है. संतोष न करना अज्ञानियोंका काम है पण्डित सदैव संतोष करके रहता है संतोषमें बड़ा सुख है और असंतोषका अन्त नहीं है इससे ज्ञानी लोग परमगतिको देखकर शोच कभी नहीं करते हैं और मनुष्यको विषाद करना भी उचित नहीं है यह विषाद बड़ा तीव्र विष है और वह ज्ञानीको इस प्रकारसे मार डालता है जैसे क्रोधित सर्प बालकको नहीं छोड़ता है.

जो मनुष्य पराक्रम करनेके समय विषाद करता है वह तेजहीन हो जाता है और उसके शरीरमें पुरुषार्थ नहीं रहता है और कियेहुये कर्मोंका फल अवश्य मिलता है. वैराग लेनेसे कुछ नहीं होता है इससे मनुष्यको उचित है कि-दुःखको दूर करनेका उपाय करै शोच न करै शुभकर्म करै और किसी बातका व्यसन न रक्खै और जो मनुष्य सब प्राणियोंमें किसी प्रकारका भाव न रखकर तत्वज्ञानसे परब्रह्मको प्राप्त होगया है, वह अपना चित्त परमगतिमें लगाकर किसी बातका शोच नहीं करता है इससे हे ब्राह्मण! मैं किसी बातका शोच नहीं करता हूं किन्तु समय देख रहा हूं मुझको किसी बातकी पीडा नहीं होती है. यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि-हे धर्मव्याध! तुम बड़े ज्ञानी और बुद्धिमान् हो, अब मुझको तुम्हारी ओरका कुछ शोच नहीं है धर्मज्ञ हो मुझको अब आज्ञा दो मैं जाना चाहताहूं तुम्हारा कल्याण हो और धर्म्म तुम्हारी रक्षा करै. मार्कंडेयजी बोले कि-हे युधिष्ठिर! यह सुनकर उस धर्मव्याधने हाथ जोड़कर कहा कि-बहुत अच्छा जाइये. तब ब्राह्मण उसकी परिक्रमा करके चल दिया और अच्छा उपदेश पानेके कारणसे उसने घर पहुँचकर अपने

मातापिताकी सेवा करना आरम्भ करदिया. हे राजा युधिष्ठिर ! यह सब धर्मकथा जो तुमने हमसे पूंछी थी हमने वर्णन की जिसमें पतिव्रता और ब्राह्मणका माहात्म्य और मातापिताकी सेवा करनेका फल कथन किया है. यह सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले कि-हे मुनिसत्तम ! हे ब्रह्मन् ! आपने यह बड़ी अद्भुत धर्मकथा कही. इससे उत्तम दूसरी कथा मैं नहीं जानता हूं. इसको सुनते सुनते इतना समय मुझको एक मुहूर्तकी तुल्य जान पड़ा है और धर्मकी उत्तम उत्तम बातोंको सुननेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता है. इति बारहवां अध्याय सम्पूर्ण.

(इति श्रीपतिव्रतामाहात्म्य कौशिकब्राह्मण-
धर्मव्याधसंवाद सम्पूर्ण).

पुस्तक मिलनेका ठिकाना,
हरिप्रसाद भगीरथजी.
पुस्तकालय-कालबादेवीरोड,
रामवाड़ी-मुंबई.
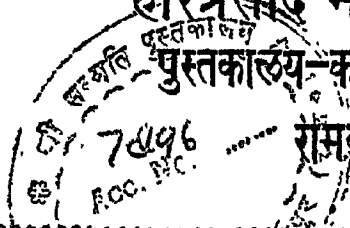
श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकृत

रामायण.

(तत्त्वदीपिका भाषाटीकासहित, सचित्र–गुटका.)

वाचकवृंद ! आनंदकंद श्रीरामचंद्रजीके पवित्र चरित्रोंकी चर्चाही इस असार संसारमें परम सार और चारों पदार्थोंके सम्पादन करनेका उत्तम द्वार है. यह विषय ऐसा रसमय है कि जिसका एकवार भली प्रकार विचार करनेसे तदाकार वृत्तिद्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार होकर ब्रह्माकार अनिर्वचनीय आनन्दका आविष्कार होता है. अतएव यह कहना पड़ता है, कि यद्यपि भाषाके भण्डारमें उत्तमोत्तम काव्यग्रंथ अनेक हैं, तथापि श्रीरामगुणवर्णनप्रधान यह "रामायण" अपने ढँगकी एक ही है। इसमें सदाचार, सद्व्यवहार, सद्विचार, सद्धर्मसार और उत्तम राजनीतिविस्तारका ऐसा अद्भुत प्रकार दर्शाया है कि जिसके कारण यूरोप आदि द्वीपान्तरनिवासीभी इसका असीम समादर करते हैं. इतनाही नहीं, वरन अंग्रेजी और जर्मनी आदि अनेक भाषाओंमें इसके अनेकानेक अनुवादभी हुए हैं. इस प्रकार सम्प्रति जो "रामायण" अन्यान्य पुस्तकोंकी अपेक्षा सर्वसामान्यमें असामान्य मान्य हो रही है, उसे हमने सरल हिन्दी भाषानुवादसहित मनोहर गुटकाके आकारमें सचित्र छापकर एक निरालाही ढँग निकाला है. यों

श्रीमहाशिवपुराण-भाषा छन्दोबद्ध

महाशयो ! इसमें पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध ऐसे दो भाग किये गये हैं. तहां पूर्वार्द्धमें छः खण्ड और उत्तरार्द्धमें पांच खण्ड इस प्रकार संपूर्ण ग्रंथ एकादश खण्डोंमें पूर्ण किया गया है. यह शैवोंका तो सर्वस्वही है; परंतु अनेक प्रकारकी अनुपम तथा रसमय कथा, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-विधायक साधन, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, अष्टांगयोगविस्तार, विविध व्रत, तीर्थ, भूगोल,खगोल, शिवके, निर्गुण-सगुण स्वरूपोंका सविस्तर वर्णन, सतीचरित्र, गिरिजाचरित्र, स्कन्दकथा, त्रिपुरासुरआदि अनेक दैत्योंका वध, लिंगमाहात्म्य, वाराणसीमाहात्म्य, दिवोदासोपाख्यान, शिवक्षेत्रमाहात्म्य, भस्मरुद्राक्षमाहात्म्य तथा धारणविधि, कैलासमाहात्म्य, शिवभक्तीकी उत्कृष्टता, शिवभक्तचरित्र, पाशुपतयोग, मृत्युंजयादिमंत्रमाहात्म्य तथा जपविधि, वर्णाश्रमधर्म, स्त्रीधर्म, राजधर्म तथा शिवजीके शतअवतारोंके चरित्र इत्यादि अनूठे २ प्रकारोंसे युक्त होनेके कारण यह पुस्तक निस्संदेह सर्व साधारणको लाभदायक होगी, इसकी रचना श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकृत रामायणकी शैलीका अनुसरण करके की गई है. अर्थात् जैसे उसमें दोहा, चौपाई तथा हरिगीतिका, चौपैया, त्रिभंगी, तोमर, तोटक, भुजंगप्रयात व नाराच आदि कर्णमधुर मनोहर छन्दोंमें अभिराम रामचरित्रका सविस्तर प्रतिपादन है; ऐसेही इसमें भी उपरि लिखित छन्दोंमें शिवमय शिवचरित्रोंका

व्यष्टिरूपमें वर्णन है. अतएव इसकी तुलसीकृत रामायणके साथ तुलना करनेमें किसी प्रकारका बाध नहीं है. इसका साद्यन्त निरीक्षण करनेसे चार वेद, षट् शास्त्र तथा अष्टादश पुराणोंका मर्म भलीभाँति अवगत होता है और यथार्थ आत्मतत्त्वबोध होकर विज्ञानात्माका प्रकाश होता है. इसके विषयमें विशेष लेख बढ़ानेका कुछ प्रयोजन नहीं; किन्तु दृष्टिगोचर होनेपर सदसद्विवेकी महाशय स्वयं अनुभव कर लेंगे. इसमें श्रीमद्वेदव्यासप्रणीत चतुर्विंशतिसहस्र-श्लोकसंबद्ध **श्रीमहाशिवपुराण** तथा शिवचरित्रप्रतिपादक **काशीखण्ड, नन्दीपुराण, दुर्वासपुराण** व **लिंगपुराणादि** अन्य ग्रन्थोंके समस्त विषयोंका सविस्तर वर्णन होनेसे यह ग्रंथ आकारमें तुलसीकृत रामायणसे बहुत बड़ा हो गया है. यह सुंदर और सुवाच्य टाईपके अक्षरोंमें अत्यन्त पुष्ट व चिक्कण कागजपर छापके प्रकाशित किया गया है और परम रमणीक विलायती चित्रित जिल्द बँधी हुई है. हम यद्यपि अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना अनुचित समझते हैं तथापि इतना तो अवश्य कहेंगे कि अद्यावधि एतादृश ग्रंथ किसीभी प्रदेशमें मुद्रित नहीं हुआ. उपसंहारमें समस्त सहृदय महोदयोंसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि-सदयहृदय होकर इसके अवलोकनद्वारा आर्यभाषा संस्कृतके गौरवका अनुभव करें, सबके सुभीतेके लिये मूल्यभी बहुत कम अर्थात् केवल रु० ४) रफ कागजका और ग्लेज कागजका रु० ५) रक्खा गया है. पोष्टव्यय नहीं लेंगे.

हरिप्रसाद भगीरथजी, कालकादेवीरोड-रामवाड़ी-मुंबई.

सर्व सज्जनोंसे निवेदन।

इस पुस्तकके तीसरे भाग में अच्छे अच्छे
लिये गये हैं। प्रथम और द्वितीय भागोंकी जिस
कदरदानी हुई उसी तरह आशा है कि इसकी भी
हमारा पुस्तकालय सारे हिंदुस्थानमें प्रख्यात
सज्जनोंकी कृपाका फल है कि हमको उत्तम उत्तम
पुस्तकें छपवाकर प्रसिद्ध करनेका अवसर प्राप्त होत
प्रार्थना है कि आध आनेका तिकट भेज हमारी
कोंका बड़ा सूचिपत्र अवश्य मंगावें.

आप सज्जनोंका कृपाकांक्षी,

पंडित हरिप्रसाद भगीरथजी

पुस्तकालय-रामवाड़ी

बम्बई.